इकाई 39 धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

39.0 उद्देश्य

इस इकाई का लक्ष्य है कि प्रारम्भिक मध्य काल में धर्म के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों की मुख्य विशेषताओं का विवेचन करते हुए भक्ति विचारधारा तथा तन्त्रवाद के रूप पर भी ध्यान केन्द्रित करना। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपको ज्ञात हो जायेगा :

- ब्राह्मणिक धार्मिक व्यवस्था में भक्ति की उत्पत्तियों के विषय में,
- उत्तर-ब्राह्मणिक मत की विशेषता के चरित्र एवं सामाजिक प्रसंग के विषय में,
- प्रारंभिक मध्य काल में भक्ति के चरित्र तथा सामाजिक प्रसंग में परिवर्तन कैसे हुआ,
- राज्य की मदद ने कैसे भक्ति सम्प्रदायों को संस्थात्मक आधार प्रदान किये,
- प्रारंभिक मध्य काल में तन्त्रवाद की उत्पत्ति तथा योगदान एवं इसके चरित्र के विषय में, और
- बौद्ध मत तथा जैन मत में तन्त्रवाद ने कैसे घुसपैठ की।

39.1 प्रस्तावना

प्रारंभिक भारत के धार्मिक इतिहास के विभिन्न चरणों से आप भली भांति अवगत हैं। पुरातात्विक सामाग्रियों से स्पष्ट है कि भारतीय धर्मों के कुछ निश्चित तत्व पुरातात्विक संस्कृतियों में निहित थे जो वेदों के पूर्वगामी थे। ऋग्वेद के श्लोकों से स्पष्ट है कि देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किस प्रकार से अर्चना की जाती थी। समय के साथ-साथ ऋग्वेद की सरल प्रार्थनायें जटिल अनुष्ठानों में परिवर्तित हो गईं जिन पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व कायम हो गया और इस स्थिति में ब्राह्मणों, शासकों तथा क्षत्रियों के बीच बढ़ते घनिष्ठ सम्बन्धों को कोई भी देख सकता है। न केवल उन घुमक्कड़ नास्तिक लोगों ने जो स्थापित समाज से दूर भागते थे बल्कि बौद्ध तथा जैन धर्मों के मतावलम्बियों ने ब्राह्मणों तथा उस कठोर समाज और नैतिक व्यवस्था का विरोध किया जिसकी ब्राह्मण वकालत करते थे। इस प्रकार इस समय में ब्राह्मण धर्म विरोधी आंदोलनों का उदय हुआ (वाममार्गी या गैर सनातनी धार्मिक आन्दोलन) जिनको न केवल शासक वर्ग ने समर्थन दिया बल्कि धनी व्यापारियों तथा जनता के अनेक वर्गों से इनको समर्थन मिला। पूर्व-गुप्त काल में बौद्ध धर्म अपनी प्रगति की चरम ऊँचाइयों पर पहुँच गया, भारत की सीमाओं से बाहर इसका प्रसार हुआ और बौद्ध धर्म के केन्द्रों का व्यापक स्तर पर निर्माण हुआ। इसी बीच ब्राह्मण धर्म में भी अनेक परिवर्तन हुए और इसी के

साथ-साथ वाममार्गी सम्प्रदायों में भी परिवर्तन हुए। धार्मिक दृष्टिकोण से होने वाले ये परिवर्तन इसलिए भी महत्वपूर्ण थे कि उपासना करने वाले के द्वारा उपासक को सर्वोच्च ईश्वर माना गया और इस प्रकार सर्वोच्च ईश्वर की उपासना एक आकार के रूप में होने लगी। वैष्णव मत तथा शैव मत ब्राह्मण धर्म के ही भाग थे और इन्होंने काफी अनुयायी आकर्षित किये इस प्रकार मूर्ति पूजा बौद्ध धर्म में भी काफी लोकप्रिय हो गई जिसके अर्न्तगत न केवल महात्मा बुद्ध या बोधिसत्व की मूर्ति की पूजा होने लगी बल्कि बौद्ध धर्म के अनेक देवताओं को पूजा जाने लगा। जैन धर्म के अन्दर भी तीर्थकरों के आकार, बहुत छोटे देवताओं, पत्थर के आकारों और अन्य प्रतीकों की भी पूजा होने लगी।

ब्राह्मणों ने मूर्ति पूजा का उपयोग विभिन्न स्रोतों से देवी-देवताओं को एकत्रित करके सामान्य पूजनीय योग्य देवताओं को निर्मित करने के लिए किया। इसी कारणवश गुप्त काल से ब्राह्मण धर्म में स्त्री देवताओं (शक्ति, देवियों) का महत्वपूर्ण स्थान हो गया। परन्तु इसके बावजूद भी ब्राह्मण धर्म में एकरूपता नहीं थी। और धर्मो की पूजा-अर्चना तथा विश्वासों में व्यापक विभिन्नतायें थीं। शैव मत के विभिन्न सम्प्रदाय जैसे पाशुपत कोला-कापालिक, कालमुख ब्राह्मणों के प्रभुत्व का विरोध करते थे। मठों के आस-पास उनकी अपनी धार्मिक व्यवस्था थी और उनको भी बहुत से राजवंशों से सहायता प्राप्त होती थी। इसी के साथ-साथ ब्राह्मणों को भी राजवंशों से सहायता प्राप्त होती थी और वे अब भी वेदों के ज्ञान के जानने वाले थे तथा वेद-यज्ञों को सम्पन्न करते। ब्राह्मणों की अग्रहार बस्तियां ब्राह्मणिक विचारों का सम्पूर्ण देश में प्रसार तथा व्यवहार करने वाली मुख्य सम्पर्क केन्द्र बन गई। इस युग में मंदिर ऐसे संस्थानों के रूप में बदल गये जहाँ पर लोग सामूहिक रूप से एकत्रित होते तथा जहाँ से ब्राह्मणिक विचारों का प्रसार भी प्रभावशाली ढंग से होने लगा।

भारत की प्रारम्भिक मध्य काल की इस जटिल धार्मिक स्थिति में यद्यपि ब्राह्मणों ने प्रमुखता प्राप्त कर ली थी परन्तु इस सन्दर्भ में हमको निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखना चाहिये

1) रूढ़िवादी ब्राह्मणिक व्यवस्था को शैव मत के आन्तरिक आंदोलन के साथ-साथ कवि सन्तों एवं तान्त्रिक पूजा करने वालों से चुनौतियां मिलती रहीं,

2) सभी धर्मों ने चाहे ब्राह्मण धर्म हो या फिर बौद्ध मत या शैव मत मंदिरों एवं मठों के रूप में अपना संस्थानात्मक आधार विकसित किया।

3) समाज के शासक एवं सम्पन्न वर्गो ने ब्राह्मणों, भिक्षुओं, धार्मिक मठाधीशों, संस्थाओं और दूसरों की सहायता भूमि-अनुदानों, धन तथा अन्य साधनों से की। संरक्षण देने वाले इन कार्यों के माध्यम से समाज के शासक तथा प्रभुत्व सम्पन्न वर्गों ने अपना स्वयं का सामाजिक आधार मजबूत किया।

इस इकाई में इन्हीं बहुत से पक्षों का विवरण किया गया है।

39.2 ब्राह्मण मत में भक्ति का उद्‌भव

ब्राह्मणों को वैदिक देवताओं इन्द्र एवं वरुण के साथ-साथ नये देवताओं विष्णु एवं शिव के बढ़ते महत्व को स्वीकार करना पड़ा। इस धारा में वासुदेव, स्कन्द जैसे नये देवताओं का भी समावेश हो गया। इन सभी कारणों वश भक्ति सम्प्रदाय का उदय हुआ।

चौथी सदी ई.पू. के आस-पास वासुदेव सम्प्रदाय लोकप्रिय होने लगा था। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आने वाले मैगस्थनीज की भांति क्लासिकल लेखकों ने इस विषय में सन्दर्भों का उल्लेख किया है।

वासुदेव के पुजारियों ने उचित धार्मिक साध्य के रूप में भक्ति को स्वीकार किया और स्वयं को भागवत कहने लगे। ईसा की प्रारम्भिक सदियों के प्राप्त अभिलेखों से स्पष्ट है कि मध्य भारत तथा दक्कन में वासुदेव सम्प्रदाय काफी लोकप्रिय था। वासुदेव सम्प्रदाय के साथ ही साथ पशुपतियों के मन्य, पशुपति या शिव के अनुयाइयों का प्रसार हुआ जो शिव की पूजा पैदावार के देवता के रूप में करते थे। पशुपत सम्प्रदाय का प्रचलन ब्राह्मणवाद विरोधी समुदायों में हड़प्पा संस्कृति के समय से ही था।

शुण तथा कुषाण शासकों के युगों में इन देवताओं की लोकप्रियता में और वृद्धि हुई। शुंग काल में जीवित रहने वाले पतांज्जलि ने अपने महाभाष्य में शिव, स्कन्द तथा विशाध की मूर्तियों की बिक्री एवं प्रदर्शनी का उल्लेख किया है। इन देवताओं के चित्रों को कुषाण राजाओं में विशेषकर दूविष्का के सिक्कों पर चित्रित किया गया है। उत्तर-ब्राह्मणिक मत में अन्य धर्मों या सम्प्रदायों की परम्पराओं को अपने अन्दर ग्रहण करने की क्षमता का विकास हो गया। यह इसलियें भी आवश्यक हो गया कि ''वाममार्गी सम्प्रदायों'' ने ब्राह्मण धर्म

को चुनौतियां देना प्रारम्भ कर दिया था। ब्राह्मण धर्म ने अन्य नये देवताओं को अपनाने के साथ-साथ वैदिक अनुष्ठान के स्थान पर भक्ति पर अपना बल देना शुरू कर दिया। भक्ति में यह अन्तर्निहित था कि उपासक ईश्वर के साथ अपना प्रत्यक्ष संबंध कायम कर सकता था। इस प्रकार ईश्वर के एकेश्वरवाद की अवधारणा विष्णु या शिव के रूप में अभिव्यक्त हुई और भक्ति शनैः-शनैः मजबूत होने लगी। भक्ति उत्तर-ब्राह्मण धर्म की एक गतिशील शक्ति बन गई जिसको हिंदूवाद के नाम से जाना गया।

39.2.1 अवतारवाद

नये ब्राह्मण धर्म की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसने अनेक स्थानीय देवताओं को अवतार का रूप देना शुरू कर दिया और जिसके कारणवश एकेश्वरवादी या अद्वैतवादी महान ईश्वर की अवधारणा का विकास हुआ। इस सन्दर्भ में अवतारवाद का तात्पर्य यह था कि जिन विभिन्न देवताओं की पूजा विभिन्न लोगों के द्वारा की जाती थी उनकी पहचान को मान्यता प्रदान की गई और उनकी पूजा उसी सर्वोच्च देवता की अभिव्यक्ति के रूप में की गई। इस प्रकार वासुदेव को विष्णु रूप में बताया गया। विष्णु वेदों में वर्णित कम महत्व के देवता के समान थे और ब्राह्मणिक ग्रंथों के अनुसार जिनकी उत्पत्ति किसी अन्धकारमय या मलिन वस्तु से हुई। बाद में विष्णु का नाम कृष्ण के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित हो गया। कृष्ण एक योद्धा तथा ग्वाले के रूप में बांसुरी बजाने वाले देवता के संयुक्त रूप का प्रतिनिधित्व करते थे। विष्णु के साथ अन्य सम्प्रदायों के देवताओं को भी संबंधित कर दिया गया। जैसे कि ''वराह देवता'' को जो मालवा के एक कबीले का देवता था, ब्राह्मण नायक परशुराम और रामायण के महान नायक राम को भी विष्णु के साथ संबंधित कर दिया गया। इसके बाद विष्णु भगवद् गीता वाले सार्वभौमिक ईश्वर हो गये।

इसी भांति शिव को भी वैदिक इन्द्र तथा भैरव के रूप में मान लिया गया। शिव एक कबीलाई ईश्वर थे और उनकी लिंग के रूप में पूजा होने लगी। बाद में शिव के साथ स्कन्द तथा हाथी-मुख वाले गणेश जैसे देवताओं को सम्बन्धित कर दिया गया। आस्तिक सम्प्रदायों ने वैदिक यज्ञों की अपेक्षा पूजा पर अधिक बल दिया।

39.2.2 कबीलाई अनुष्ठानों को अपनाना

उत्तर-ब्राह्मण धर्म की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसने सिद्धांतः वैदिक याज्ञिक अनुष्ठानों की सर्वोच्चता को बनाये रखते हुए कबीलाई अनुष्ठानों को अपना लिया। समय के साथ-साथ इन कबीलाई अनुष्ठानों के गुणों की तुलना वैदिक यज्ञों से की जाने लगी। आगे चलकर कबीले के पवित्र स्थलों को नये तीर्थस्थलों के रूप में कुछ कपोल कल्पनाओं के साथ ससम्मान स्वीकार कर लिया गया। इतिहास तथा पुराण ऐसी बहुत सी कहानियों से भरपूर हैं जिन्होंने व्यक्तिगत ईश्वर की ओर भक्ति को प्रेरित किया।

39.2.3 मंदिरों एवं ईश्वरवाद को राजकीय संरक्षण

पुराणों में मथुरा तथा बनारस जैसे महान धार्मिक केन्द्रों की धार्मिक यात्रा के पुण्यों पर प्रकाश डाला गया है और ये नगर महत्वपूर्ण तीर्थस्थल थे। इसके कारण मंदिर संस्था को विशेष बढ़ावा मिला। वास्तव में उस काल के पुराणों तथा अन्य ग्रंथों में ऐसे बहुत से तीर्थस्थानों के नाम दिये गये हैं जिनकी यात्रा भक्त लोग काफी बड़ी संख्या में करते थे क्योंकि इन तीर्थों पर जाने से पुण्य की प्राप्ति होती थी। मंदिर जो देवता का घर है, पूजा के स्थल बन गये और उपासना करने वाले लोग अपने घरों का परित्याग करके ऐसे स्थल की ओर पूजा करने के लिये आते थे जो सार्वजनिक केन्द्र हो गये थे। गुप्त काल में मंदिर स्थापत्यकला की जटिल शैली की नींव पड़ी। देवगढ़ का दसावतार मंदिर, तिगाव का विष्णु मंदिर और भूमरा का शिव मंदिर गुप्त काल के ऐसे मंदिर हैं जो आज भी मौजूद हैं और अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध हैं। मंदिरों में उनके स्थापत्य में महाकाव्यों और पुराणों में राम तथा कृष्ण से संबंधित वर्णित कहानियों के अति सुन्दर नमूने पाये गये हैं। गुप्त राजाओं ने वैष्णव तथा शैव दोनों मतों को संरक्षण प्रदान किया। गुप्त शासकों का व्यक्तिगत धर्म वैष्णव धर्म था जिसके फलस्वरूप गुप्त काल में वैष्णव धर्म के अनेक केन्द्रों तथा मूर्ति कलाओं का भरपूर विकास हुआ। विष्णु के अवतारवाद का या यों कहें कि वराह एक मछली मानव को संकट से उभारने के लिये विष्णु का भूमि पर अवतारवाद के रूप में जन्म लेने की परम्परा का व्यवस्थित ढंग से प्रचलन गुप्त काल में ही प्रारम्भ हुआ।

छठी तथा सातवीं सदियों में वैष्णव धर्म का स्थान शैव धर्म ने ग्रहण कर लिया क्योंकि उत्तरी भारत में उसी राज्य का संरक्षण प्राप्त हुआ। शैव मत के अनुयायी उच्चतम शासकों से लेकर विदेशियों तथा भारतीयों तक के सभी वर्गों में थे। राजाओं में उसके अनुयायी मिहिरकुल, यशोवर्मन, शंशाक और हर्ष थे। पाशुपत या शैव

आचार्यों को समकालीन साहित्य में पर्याप्त मात्रा में उद्धत किया गया है। और इस साहित्य के अन्तर्गत अभिलेख, वराहमिहिर, बाण और ह्वेन-त्सांग की रचनायें भी सम्मिलित हैं।

39.3 दक्षिण भारत की ओर भक्ति का प्रसार

उत्तर भारत के सभी बड़े धर्मों जैसे कि बौद्ध धर्म, जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म का प्रसार दक्षिण की ओर हुआ। ब्राह्मण धर्म के साथ-साथ दक्षिण के लोग वैदिक यज्ञों तथा गैर सनातनी सम्प्रदायों विष्णु मत और शैव मत के सम्पर्क में भी आये। राजाओं ने वैदिक अनुष्ठानों का इसलिये समर्थन किया क्योंकि ये अनुष्ठान उनकी स्थिति को मान्यता प्रदान करते थे। परन्तु ये वाममार्गी सम्प्रदाय सामान्य जनता के मध्य लोकप्रिय हो गये। परन्तु दक्षिण भारत में अकस्मात् ही भक्ति वाले ये दोनों वाममार्गी सम्प्रदाय अन्य किसी धर्म से अधिक शक्तिशाली हो गये और इस तथ्य की पुष्टि इससे भी होती है कि वैष्णव मत तथा शैव मत और उनके अन्य सम्प्रदायों को राजवंशों ने संरक्षण प्रदान किया। वतापि के प्रारम्भिक चालुक्य शासकों के मध्य कुछ भागवत मत तथा कुछ ने पशुपत सम्प्रदाय को प्रचारित किया। बादामी के प्रसिद्ध पत्थर स्तम्भों पर बने चित्र, दक्कन में छठी-सातवीं ई. सदियों में गैर सनातनी सम्प्रदायों (वाममार्गी सम्प्रदायों) की लोकप्रियता के प्रतीक हैं। इसी प्रकार कांची के पल्लव शासकों ने इन दोनों वाममार्गी सम्प्रदायों को संरक्षण प्रदान किया और इसकी पुष्टि महाबलिपुरम के एक ही पत्थर शिला पर बने रथों तथा उन पर बने बहुत से चित्रों के द्वारा होती है।

दक्षिण भारत में कुछ विशेष देवताओं की पूजा के इर्द गिर्द भक्ति के केन्द्रीकरण का प्रसार बड़ी तीव्रता से प्रारम्भ हुआ और इसका प्रसार ब्राह्मणों की बस्तियों तथा उन मंदिरों के माध्यम से भी हुआ जहाँ पर भूमि-अनुदानों की दानशीलता के साधनों से महाकाव्यों तथा पुराणों की व्याख्याओं को संस्थात्मक किया गया। इस प्रकार भक्ति की अवधारणा आम जनता के बीच लोकप्रिय हो गई। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि ब्राह्मणों ने जिस प्रकार से उत्तर भारत में प्रारम्भिक धार्मिक रूपों का रूपान्तरण मंदिर को केन्द्र बनाकर वाममार्गी संस्कृति में किया उसी प्रक्रिया को पुनः दक्षिण में भी दोहराया गया।

39.4 दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन

भक्ति वाममार्ग का अन्तिम स्वरूप मुख्यतः तमिल उपासनावाद के प्रभाव का परिणाम था। यह उपासनावाद स्थानीय कबीलाई सम्प्रदायों (वेलान वेरिपादल) के परमानन्द तथा उत्तर वाममार्गी विचारों के संगम की उपज था। यह पारस्परिक सम्मिश्रण तिरुपति तथा कलाहस्ति में प्रारम्भ हुआ जिनसे उस समय के तमिल देश का उत्तरी द्वार बनता था। फिर इसका विकास कांचीपुरम के आसपास हुआ जो उस समय पल्लव शासकों की राजधानी होती थी तथा शीघ्र ही यह पांडेय राजधानी मदुरई में पहुँच गया। **विरु मरुगन अरुप्पादई मुरुगन** देवता पर लिखा गया एक प्रसिद्ध उपासना वाला ग्रंथ है और इसमें स्थानीय कबीलाई देवता मुरुगन को स्कन्द का अवतार बताया गया है तथा पारस्परिक प्रजनन का सबसे पहला उदाहरण है।

शीघ्र ही तमिल उपासनावाद एक आंदोलन के रूप में उस समय विकसित हो गया जब इसने वैष्णव मत तथा शैव मत के दोनों वाममार्गी सम्प्रदायों को स्वीकार कर लिया। तब भक्ति आंदोलन देवता की पूजा करके गहन परमानन्द प्राप्त करने वाला न होकर वह उन वाममार्गी सम्प्रदायों के विरुद्ध एक आक्रामक आवेग हो गया जो राजकीय समर्थन के साथ जनता में लोकप्रिय होते जा रहे थे।

इस आंदोलन का प्रसार छठी सदी ई. में उन जन्मजात कवि सन्तों द्वारा किया गया जिन्होंने धर्म प्रचार के लिये कई बार देश का भ्रमण किया। वे अपने सारे रास्ते गीतों को गाते चलते, नाच करते और वाममार्गी सम्प्रदायों के साथ वाद विवाद करते। इन कवि सन्तों में शैव मत के अनुयाइयों को "नयनारो" के नाम से तथा वैष्णव सन्तों को "आलावरो" के नाम से जाना जाता था।

इस महान उत्साहवर्धक धार्मिक धारा का चरमोत्कर्ष प्रारम्भिक सातवीं सदी ई. में हुआ और इसकी अन्तिम विजय आगामी दो सदियों में हुई। इस काल के गायक कवि सन्तों की मुख्य विशेषता यह थी कि वे बौद्ध मत तथा जैन मत के विरुद्ध घृणात्मक तरीके से बोलते थे। इसके परिणाम-स्वरूप सार्वजनिक वाद विवाद, आश्चर्यजनक कार्यों को करने की प्रतियोगिता और अपने सिद्धान्तों की सत्यता को सिद्ध करने के लिए कठिन से कठिन परीक्षा को अपनाना दिन प्रतिदिन के कार्य हो गये। इन गायक सन्तों की सफलता का एक अन्य कारण भी था। इन गायक सन्तों ने जन साधारण की भाषा तमिल में सरलता से समझ में आ जाने वाले तरीकों से अपनी रचनाओं को गाया। उन ब्राह्मणों की भांति नहीं जो गोपनीय सिद्धान्तों तथा संस्कृत भाषा के माध्यम से हिन्दू धर्म का प्रचार करते थे। भक्ति की अवधारणा के अनुसार श्रेष्ठतम देवता के लिये

कोई विशेष सम्मान न करके अपितु उसके प्रति असीम प्रेम भाव को प्रकट करना था। भक्ति आन्दोलन की इस शक्तिशाली धारा को राज्य का भी समर्थन मिला जिसके कारण जैन तथा बौद्ध मत इसका सामना न कर सके और दक्षिण भारत में ये दोनों धर्म मृतप्रायः हो गये।

39.5 दक्षिण भारत के भक्ति आंदोलन में प्रतिरोध एवं सुधार और भक्ति आंदोलन का बाद में रूपान्तरण

जहाँ एक ओर ब्राह्मण जातिवादी नियमों का अनुसरण करते थे वहाँ भक्ति सम्प्रदाय ने न केवल जाति की अवेहलना की बल्कि उन्होंने अपने सम्प्रदाय में सभी जातियों के पुरुषों और स्त्रियों को सम्मिलित किया। नयनारों में अम्माई एक महिला तथा नंदनार एक छोटी जाति का सदस्य था। आलवरों में अन्दाल एक महिला थी और निरुप्पन छोटी जाति का था जो भक्ति गीतों को गाता था। इस प्रकार सम्पूर्ण भक्ति आंदोलन के अन्तर्गत विरोध एवं सुधार के तत्व मौजूद थे। परन्तु शीघ्र ही यह स्थापित व्यवस्था का एक अंग बन गया तथा इसको भी रूढ़िवादी ब्राह्मणों का संरक्षण प्राप्त हो गया।

भक्ति आंदोलन का विकास तथा संगठन प्रारंभिक मध्यकाल के राजतन्त्रों की भांति पहले पल्लवों एवं फिर चोल, पाण्डेय और चेरों के अधीन हुआ। पत्थर की चट्टानों से काटकर बनाए गए मंदिर और स्थापत्य कला के प्रतीक सुन्दर मंदिरों का निर्माण विष्णु एवं शिव के लिये सम्पूर्ण तमिलनाडु में उपरोक्त राजतन्त्रों के शासन काल में हुआ। इन मन्दिरों के लिये भूमि अनुदानों में प्राप्त हुई तथा कभी-कभी कर मुक्त विशाल भूमि भी थी। दक्षिण भारतीय मंदिरों की दीवारों पर खुदे हजारों दान अभिलेखों से स्पष्ट है कि ब्राह्मणों को भूमि का विशाल क्षेत्र अनुदान में प्रदान किया गया। शीघ्र ही पुरोहित और राजा की एक धुरी कायम हो गई। राजाओं ने मंदिरों पर केन्द्रित भक्ति अवधारणा का स्वागत किया क्योंकि यह राजतन्त्र की विचारधारा के अनुकूल थी। ब्राह्मणों ने इसका स्वागत इसलिये किया क्योंकि ब्राह्मण मत को मंदिर केन्द्रीकृत कृषि बस्तियों के रूप में संस्थात्मक आधार प्राप्त हो गया जिसके फलस्वरूप उसका दक्षिण में उत्थान एक गतिशील शक्ति के रूप में हुआ।

सभी जगहों पर मंदिर धार्मिक जीवन तथा नये सामाजिक निर्माण के मुख्य केन्द्र थे। ये मंदिर ब्राह्मणिक व्यवस्था की दो भुजाओं अर्थात् वैदिक अनुष्ठानिक सम्प्रदाय तथा अनीश्वरवादी सम्प्रदायों के मिलन बिन्दु के केन्द्र बन गये। मंदिर केन्द्रित भक्ति सम्प्रदाय की अवधारणा के कारण दक्षिण भारत के पुराने कबीले जाति व्यवस्था को स्वीकार करने की ओर आकर्षित हुए और जिससे उन्होंने पदानुक्रम जाति व्यवस्था को अंगीकार कर लिया। इस व्यवस्था ने कबीलों के लिये अनुष्ठानों तथा सामाजिक स्तरों को ब्राह्मणों के द्वारा निश्चित किये गये नियमों के अनुरूप ही निश्चित कर दिया। भक्ति की विचारधारा के माध्यम से राजाओं, पुरोहितों तथा आम जनता को आपसी सौहार्दपूर्ण सामाजिक संबंधों के ढांचे के अन्तर्गत एक साथ लाया जा सका।

राजाओं तथा ज़मींदारों के बढ़ते संरक्षण के कारण शीघ्र ही भक्ति आंदोलन व्यवस्था का एक अंग बन गया। दसवीं सदी ई. में सभी प्रकार के धार्मिक मतभेदों, विरोध तथा सुधार को समाप्त कर दिया गया। आलवर तथा नयनार अब कहीं दिखायी नहीं पड़ते थे। उनका स्थान वैष्णव आचार्यों ने ले लिया जो सभी ब्राह्मण थे या फिर शैववादी सनातनाचार्य के जो धनी भूस्वामी ललाल जाति से आये थे।

बोध प्रश्न 1

1) मंदिरों को दी जाने वाली राजकीय सहायता के विषय में पांच पंक्तियों में विवरण दीजिये।

....

....

....

....

....

2) किस प्रकार से दक्षिण में भक्ति आंदोलन ब्राह्मण धर्म से भिन्न हैं? 10 पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

39.6 तन्त्रवाद की उत्पत्ति

ऐसी धार्मिक क्रियायें जिनकी उत्पत्ति गैर आर्य कबीलाई लोगों के अति प्राचीन प्रजनन संस्कारों से हुई थी उनको बाद में चलकर तन्त्रवाद के नाम से जाना गया। इसने न केवल अन्य ''साम्य'' सम्प्रदायों (जैन मत, बौद्ध मत, शैव मत, वैष्णव मत आदि) को प्रभावित किया बल्कि इसका उद्भव उन सम्प्रदायों के लिये चुनौती एवं प्रतिक्रिया के रूप में हुआ जिनके अन्तर्गत निहित स्वार्थ उत्पन्न हो गये थे और जो प्रारम्भिक मध्यकाल के आते आते व्यवस्था का एक अंग बन गये। स्थापित धर्म की रीतियों ने तान्त्रिक धर्म को संशोधित किया और रहस्यमयी परिभाषाओं तथा प्रतीकों के माध्यम से इनको शुद्ध करने के प्रयास किये। इसलिये आधुनिक शिक्षितवर्ग के लिये तन्त्रवाद का तात्पर्य है कि आवेषपूर्ण संस्कारों को प्राप्त करने के लिये पांच मकरों—मद्य(शराब), मत्स्य (मछली), मांस, मुद्रा (हाव भाव) और मैथुन का उपयोग करना आवश्यक माना गया।

39.6.1 तन्त्रवाद की कुछ मुख्य विशेषतायें

सदैव जन मानस के बीच एक ऐसा छोटा समुदाय रहता है जिनके लिये रहस्यवाद, प्रजनन के संस्कारों और रहस्मयी कबीलाई सम्प्रदाय अनिवार्य दिखायी पड़ते हैं। ऐसे लोग जो औपचारिक सभ्य धर्म से असन्तुष्ट थे वे युगों से इन रहस्यमयी संस्कारों से लगातार कुछ न कुछ जानकारी प्राप्त करते रहे और उनको अपनाते रहे।

प्रारंभिक मध्यकाल की तान्त्रिक क्रियाओं में हम देखते हैं कि उसकी तीन महत्वपूर्ण विशेषतायें एक दूसरे से आंतरिक रूप से संबंधित थीं। ये तीनों विशेषतायें थीं महिलाओं को ऊच्च स्थान प्रदान किया गया, यौन सम्बंधित अनुष्ठान और कई महिला देवताओं (देवियों) की उपस्थिति।

इन सबकी उत्पत्ति का कारण कबीलाई प्रजनन संस्कारों को बताया गया है। सभी कबीलाई क्षेत्रों में महिलाओं को उच्च स्थान प्राप्त था। जिस समय से उनको संस्कृत के ग्रंथों में शूद्रों की श्रेणी में रखा जाने लगा तब से अपना परम्परागत अनुष्ठानिक स्तर बनाये रखने के लिये यह आवश्यक हो गया कि वे तान्त्रिक क्रियाओं के साधनों को अपनायें।

इसी प्रकार भारत तथा भारत से बाहर आदिम लोगों के बीच उनके धार्मिक संस्कारों को निर्मित करने में यौन संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। कबीलाई लोगों द्वारा यह विश्वास किया जाता था कि इस प्रकार के सस्कारों से भूमि की उर्वराता में भी वृद्धि होती है।

तन्त्रवाद में देवियों या देवी माता का महत्व इस कारण से था कि सभी कबीलाई क्षेत्रों में देवी शक्ति या देवी माता के सम्प्रदाय का लोकप्रिय प्रचलन था। इन कबीलाई देवियों का प्रवेश ब्राह्मण धर्म में शक्ति के रूप में, बौद्ध धर्म में तारा तथा जैन धर्म में बहु संख्यक यक्षिणियों के रूप में हुआ। प्रारम्भिक मध्यकाल का प्राकृत भाषा का ग्रंथ गौड़वद्य काली एवं पारवती देवियों से उसी प्रकार सम्बन्धित हैं जैसे कि वे कोल एवं सुपारा कबीलों, शक्ति मातंगल (मातंग कबिले की देवी) और चाण्डपलि (चण्डाल कबीले की देवी) देवियों को जादू वाले संस्कारों, धार्मिक यौवनता और पशुबलि की एक नयी रीति के साथ उच्च सम्प्रदायों में शामिल कर लिया गया। प्रारम्भिक मध्य काल में इन सबका बहुत महत्व बढ़ गया। तन्त्रवाद का एक धर्म के रूप में उदय छठी सदी ई. में हुआ और नौवीं सदी में एक ताकतवर शक्ति बन गया।

इस वास्तविकता के बावजूद कि प्रारंभिक मध्यकाल में तन्त्रवाद अपने मूल चरित्र को खो चुका था और इसे भी राजाओं, अधिकारियों और उन उच्च वर्गों के द्वारा जिन्होंने इसका संस्कृतिकरण किया, ने संरक्षण प्रदान किया परन्तु फिर भी तन्त्रवाद संगठित एवं औपचारिक संरक्षण प्राप्त, ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के लिये एक चुनौती बना रहा।

तन्त्रवाद के पुरोहितों ने ब्राह्मण धर्म के दीक्षा वाले संस्कारों को भी चुनौती दी। अगर ब्राह्मणों ने अपनी सर्वोच्चता का दावा वैदिक अनुष्ठानों के आधार पर किया तो कबीलाई पुरोहितों ने अपनी जादुई शक्तियों का दावा अपने रहस्यवादी अनुष्ठानों तथा यौवन योग क्रियाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। इस प्रकार तन्त्रवाद ने, उन छोटी जातियों और महिलाओं को दीक्षा प्रदान करके जिनको ब्राह्मणिक व्यवस्था ने समाज में निम्न स्थान प्रदान किया था, महत्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्य की सेवा की।

तांत्रिक पुरोहितों ने अनेक अनुष्ठानों पर अपने स्वामित्व का दावा किया, जैसे कि वे गूढ़ क्रियाओं और जड़ी बूटियों से न केवल सांप के काटने, कीड़ों मकोंड़ों के काटने और अन्य बीमारियों का इलाज करते थे बल्कि उन्होंने भूत प्रेतों एवं ग्रहों के बुरे प्रभावों को भी दूर करने वाले अनुष्ठानों को सम्पन्न करने का काम किया। इस प्रकार प्रारंभिक मध्यकाल के तान्त्रिक पुरोहितों ने एक पुरोहित, चिकित्सक, ज्योतिषि एवं पशमन (ओझा) का कार्य किया।

39.6.2 तन्त्रवाद तथा वाममार्गी धर्म

यह देखा गया कि आदिम प्रजनन्न संस्कार परिष्कृत रूप में पुनः प्रकट हुए, जैसे कि तन्त्रवाद ने बौद्ध मत, जैन मत एवं ब्राह्मणिक विचारधारा में भी प्रवेश किया। बुद्ध एवं महावीर के समकालीन मक्षालि घोसाल ने न केवल नग्नता को ग्रहण किया अपितु ऐसा कहा जाता है कि वे शराब का सेवन करते और कामोत्तेजना के लिये यौन क्रियाओं को भी करते। इन क्रियाओं की उत्पत्ति निश्चित रूप से आदिम सम्प्रदायों से हुई थी।

प्रारंभिक बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म ने इन तान्त्रिक क्रियाओं के प्रभाव को अपने सम्प्रदायों पर पड़ने से रोकने के लिए भरसक प्रयास किया। बौद्ध मत तथा जैन मत ने अपने इतिहास के प्रारंभिक दौर में मूर्ति पूजा के सम्प्रदाय नैतिक मूल्यों को नष्ट करने वाले अनुष्ठानों तथा बलि यज्ञों के विरुद्ध व्यवस्थित ढंग से अभियान चलाया। उन्होंने आत्मा की पवित्रता पर बल दिया क्योंकि इसी से निर्वाण या मुक्ति प्राप्त की जा सकती थी।

कुषाण काल के दौरान बौद्ध धर्म की एक शाखा महायान मत ने मूर्ति पूजा को ग्रहण कर लिया। महायान मत ने स्वयं को मन्त्रवाले मत या आंध्र प्रदेश के क्षेत्रों में तान्त्रिक प्रक्रियाओं को धारण करते हुए वज़यान मत के रूप में विकसित कर लिया। आन्ध्र तथा कलिंग प्रदेशों में तीसरी सदी ई. में लिखे जाने वाले अनेक तान्त्रिक ग्रंथों ने वंगा तथा मगध में तन्त्रवाद का प्रसार किया और पाल शासकों के शासन काल में मगध क्षेत्र नालन्दा का तान्त्रिक अध्ययन केन्द्र के रूप में विकास हुआ। श्री गुहयासमाज तन्त्र को सम्भवतः तीसरी सदी ई. में लिखा गया। वज्रयान तान्त्रिक साहित्य इतना विशाल है कि तिब्बत भाषा में जो साहित्य पाया गया है उसकी नाममात्र की सारिणी तीन खण्डों में संकलित की गई है।

ईसा की प्रारंभिक सदियों में जैन धर्म में भी मूर्ति पूजा एवं अनुष्ठानों की रीति प्रकट होने लगी। सामन्तभद्र (तीसरी सदी ई.) ने अपनी रचना पोपाकेरिया में अनुष्ठानों तथा मंदिर पूजा की महत्ता को दर्शाया। जैन धर्म के पुराणों और अन्य साहित्य में इस पर बल दिया गया कि आदिनाथ के उपासकों को शत्रुओं, बीमारियों एवं बुरी आत्माओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।

प्रारम्भिक मध्यकाल में तन्त्रवाद ने अन्य धर्मों की भांति जैन धर्म पर भी अपना प्रभाव डाला। फलस्वरूप, जैन धर्म ने यक्षों तथा यक्षियों (तीर्थाकारों के देव एवं देवियां) के लिये देवालयों का निर्माण किया और इसी के साथ कुछ मन्त्रों (जादुई मन्त्र) को विकसित किया जिससे कि उनको तुष्ट किया जा सके। जैन तान्त्रिक ग्रंथों में जिनमें जादूई तथा आश्चर्य चकित तत्वों को शामिल किया गया, तथा उनके पद्मावति, अम्बिका, सिद्धायिका और ज्वालामालिनी जैसी यक्षियों के सम्प्रदाय की भी महिमा की गई। ऐसा विश्वास किया जाता था कि ये यक्षियां अपने भक्तों को दिव्य शक्तियां प्रदान करती थीं। जैन धर्म के यपानिया सम्प्रदाय ने प्रारम्भिक मध्य काल के कर्नाटक में तान्त्रिक रीति की पूजा का काफी प्रचार किया।

बोध प्रश्न 2

1) तन्त्रवाद की मुख्य विशेषताओं का विवरण 10 पंक्तियों में दीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) तन्त्रवाद के अन्य गैर सनातनी या वाममार्गी धर्मों के साथ सम्बंधों की विवेचना कीजिये। उत्तर दस पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

39.7 सारांश

इस इकाई में आप देख चुके हैं कि ब्राह्मण धर्म ने किस प्रकार से अन्य देवताओं के बढ़ते महत्व को स्वीकार किया और किस भांति से लोकप्रिय देवताओं को अपने में मिला लिया। भक्ति सम्प्रदाय का उद्‌भव विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों से हुआ और दक्षिण भारत में वह ताकतवर सम्प्रदाय बन गया। इसने जाति नियमों की अनदेखी की और भक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत ब्राह्मण धर्म की तुलना में महिलाओं का दर्जा ऊंचा था। इसी काल में महिला देवताओं (देवियों) की संख्या में भी विशेषकर तान्त्रिक सम्प्रदाय में वृद्धि हुई। तन्त्रवाद की अनेक क्रियायें अन्य धर्मों में भी प्रवेश कर गईं।

39.8 शब्दावली

आलवारः प्रारम्भिक मध्यकाल के तमिल देश के वैष्णव सन्तों को कहा जाता था तथा उनकी पारम्परिक संख्या 12 थी (छठी सदी से नौवीं सदी ई. तक)।

भागवत : वासुदेव—कृष्ण का भक्त

ब्राह्मण धर्म : ब्राह्मण के नेतृत्व में यह एक संहिताबद्ध धर्म है। सिद्धांत रूप से यह सदैव वैदिक अनुष्ठानों की सर्वोच्चता को बनाये रखता है, इसने भक्ति, कबीलाई देवताओं एवं कबीलाई अनुष्ठानों को अपना लिया।

वाममार्गी सम्प्रदाय : वह सभी धर्म जिन्होंने ब्राह्मण धर्म को चुनौती दी, जैसे जैन मत, बौद्ध मत, आजीविका मत आदि।

मुरूगन : प्रारम्भिक तमिलों का यह एक कबीलाई देवता था। तीसरी-चौथी सदियों ई. के आस पास ब्राह्मणों ने इसको स्कन्द कार्तिकेय का अवतार बना दिया।

नयनार : तमिल देश के प्रारम्भिक मध्य काल में शैव भक्ति सम्प्रदाय के संत थे। इनकी संख्या 63 थी और उनमें से कुछ भक्ति गीतों के महान् कवि भी थे।

निर्वाण : वाममार्गी धर्मों के अनुसार आत्मा की मुक्ति।

पशुपत : शिव या पशुपति के भक्त। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति उत्तर में हुई और इसकी कुछ विशेषतायें थीं।

शैव मत : ऐसा कोई भी सम्प्रदाय जिसके अनुसार शिव को सर्वोच्च देवता माना जाता हो। शैव मत में स्थानीय विभिन्नतायें हो सकती हैं।

तन्त्रवाद : एक ऐसा धर्म जिसकी उत्पत्ति अनार्य कबीलाई क्षेत्रों में आदिम जनन (प्रजनन) संस्कारों से हुई।

वैष्णव मत : एक ऐसा धर्म जिसमें सर्वोच्च देवता विष्णु हो।

वेलान बेरियावलः यह सम्प्रदाय आदिम तमिल कबीलों के मुरुगन देवता पर केन्द्रित अति प्राचीन आवेगपूर्ण रहस्यवादी सम्प्रदाय था।

यज्ञ : जटिल अनुष्ठान जिनके अन्तर्गत अति खर्चीले पशुओं की बलि देना शामिल था और उत्तर वैदिक काल में प्रचलित था।

39.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए उपभाग 39.2.3
2) देखिये भाग 39.3 और 39.4

बोध प्रंश्न 2

1) देखिये उपभाग 39.6.1
2) देखिये उपभाग 39.6.2